

श्रद्धान तो ऐसा रखो कि - यह भी बंध का कारण है - हेय है; श्रद्धान में इसे मोक्षमार्ग जाने तो मिथ्यादृष्टि ही होता है।”

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि लौकिक दृष्टि से पाप की अपेक्षा पुण्य अच्छा है व इसी तथ्य को लक्ष्य में रखकर शास्त्रों में उसे व्यवहार से धर्म भी कहा गया है तथापि मुक्ति के मार्ग में उसका स्थान अभावात्मक ही है।

पुण्य भला मानने में मूल कारण पुण्य के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली भोग-सामग्री में सुखबुद्धि है। जब तक भोगों को सुखरूप माना जाता रहेगा तब तक पुण्य में उपादेयबुद्धि नहीं जा सकती। ज्ञानानंद स्वभावी आत्मा के स्पर्श के बिना भोगों में से सुखबुद्धि नहीं जा सकती है। ज्ञानानंद स्वभावी आत्मा का अनुभव ही शुद्ध भाव है जो कि शुभाशुभ (पुण्य-पाप) भाव के अभावरूप होता है। अतः सम्यक् सुखाभिलाषी जीवों को आत्मानुभूतिरूप शुद्धभाव को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

पुण्य भला मानने में मूल कारण पुण्य के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली भोग-सामग्री में सुखबुद्धि है। जब तक भोगों को सुखरूप माना जाता रहेगा तब तक पुण्य में उपादेयबुद्धि नहीं जा सकती। ज्ञानानंद स्वभावी आत्मा के स्पर्श के बिना भोगों में से सुखबुद्धि नहीं जा सकती है। ज्ञानानंद स्वभावी आत्मा का अनुभव ही शुद्ध भाव है जो कि शुभाशुभ (पुण्य-पाप) भाव के अभावरूप होता है। अतः सम्यक् सुखाभिलाषी जीवों को आत्मानुभूतिरूप शुद्ध भाव को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रश्न :-

१. मुक्ति के मार्ग में पुण्य का क्या स्थान है?
२. पुण्य और पाप किसे कहते हैं?
३. पुण्य और पाप के कारणादि भेदों को स्पष्ट करते हुए दोनों में सयुक्ति एकत्व स्थापित कीजिए।

पाठ ४

उपादान-निमित्त

प्रवचनकार -

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।

मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्॥

जगत का प्रत्येक पदार्थ स्वयं परिणमनशील है। पदार्थों के परिणमन को पर्याय या कार्य कहते हैं। कार्य को कर्म, अवस्था, हालत, दशा, परिणाम और परिणति भी कहते हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने परिणमन का कर्त्ता स्वयं है। उसे अपने परिणमन में दूसरे के सहयोग की रंचमात्र भी आवश्यकता नहीं है। अज्ञानी जीव पर के सहयोग की आकांक्षा से व्यर्थ ही दुःखी होते हैं।

जिज्ञासु -

कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति संभव नहीं है। अतः कारणों की खोज को व्यर्थ कैसे माना जा सकता है?

प्रवचनकार -

तुम ठीक कहते हो कि कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति सम्भव नहीं है। किन्तु जानते हो कारण किसे कहते हैं? कार्य की उत्पादक सामग्री को ही कारण कहते हैं। वे कारण दो प्रकार के होते हैं - उपादानकारण और निमित्तकारण।

जो स्वयं कार्यरूप परिणमित हो, उसे उपादानकारण कहते हैं। जो स्वयं कार्यरूप परिणमित न हो, परन्तु कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप जिस पर आ सके, उसे निमित्तकारण कहते हैं; जैसे - 'घट' रूप कार्य का मिट्टी उपादानकारण है और चक्र, दण्ड एवं कुम्हार निमित्तकारण हैं।

जिस पदार्थ में कार्य निष्पन्न होता है उसे उपादान और उस कार्य को उपादेय कहते हैं और निमित्त की अपेक्षा कथन करने पर उसी कार्य को नैमित्तिक कहते हैं। एक ही कार्य को उपादानकारण की अपेक्षा कथन करने पर उपादेय और निमित्तकारण की अपेक्षा कथन करने पर नैमित्तिक कहा जाता है।

जिज्ञासु -

उपादान-उपादेय और निमित्त-नैमित्तिक को कृपया उदाहरण देकर समझा दीजिए।

प्रवचनकार -

सुनो ! जैसे 'घट' कार्य का उपादानकारण मिट्टी रूप द्रव्य है। यहाँ 'मिट्टी' उपादान है, अतः इसकी अपेक्षा कथन करने पर 'घट' कार्य 'उपादेय' कहा जायगा तथा 'घट' कार्य के कुम्हार, चक्रादि निमित्तकारण है। निमित्तों की अपेक्षा कथन करने पर उसी 'घट' कार्य को 'नैमित्तिक' कहा जायगा।

यहाँ उपादेय शब्द का प्रयोग 'ग्रहण करने योग्य' इस अर्थ में नहीं है। यहाँ तो निमित्त की अपेक्षा जिस कार्य को नैमित्तिक कहा जाता है, उसे ही अपने उपादान की अपेक्षा उपादेय कहा जाता है। आशा है अब आप लोगों की समझ में आ गया होगा।

जिज्ञासु -

आ गया ! अच्छी तरह आ गया !!

प्रवचनकार -

तो, 'स्वर्णहार' और 'सम्यग्दर्शन' रूप कार्य पर उपादान-उपादेय और निमित्त-नैमित्तिक घटाइये।

जिज्ञासु -

स्वर्ण रूप द्रव्य उपादान है और 'हार' (स्वर्णहार) उपादेय है। आग, सुनार आदि निमित्त हैं और 'हार' नैमित्तिक है। इसी प्रकार आत्मद्रव्य या श्रद्धा गुण उपादान है और सम्यग्दर्शन उपादेय हैं। मिथ्यात्वकर्म का अभाव निमित्त है और सम्यग्दर्शन नैमित्तिक है।

प्रवचनकार -

बहुत अच्छा !

शंकाकार -

उपादान यदि 'द्रव्य' या 'गुण' है तो वह सदा काल विद्यमान रहता है, अतः विवक्षित कार्य सदा होता रहना चाहिए।

प्रवचनकार -

उपादान दो तरह का होता है -

(१) त्रिकाली उपादान (२) क्षणिक उपादान।

जो द्रव्य या गुण स्वयं कार्यरूप परिणमित हो उसे त्रिकाली उपादानकारण कहते हैं।

क्षणिक उपादानकारण को दो तरह से स्पष्ट किया जाता है :-

१. द्रव्य और गुणों में अनादि-अनन्त पर्यायों का प्रवाहक्रम चलता रहता है। उस अनादि-अनन्त-प्रवाहक्रम में अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय क्षणिक उपादानकारण है और अनन्तर उत्तर क्षणवर्ती पर्याय कार्य है।

२. उस समय की पर्याय की उस रूप होने की योग्यता क्षणिक उपादानकारण है और वह पर्याय कार्य है।

क्षणिक उपादानकारण को समर्थ उपादानकारण भी कहते हैं। त्रिकाली उपादानकारण तो सदा विद्यमान रहता है, यदि उसे ही पूर्ण समर्थकारण मान लिया जाय तो विवक्षित कार्योत्पत्ति का सदा प्रसंग आयगा। अतः अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय एवं उस समय उस पर्याय के उत्पन्न होने की स्वयं की योग्यता ही समर्थ उपादानकारण हैं, जिनके बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं होती है और जिनके होने पर नियम से कार्य की उत्पत्ति होती है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अनन्तर पूर्व पर्याय विशिष्ट द्रव्य उपादान है और अनन्तर उत्तर पर्याय विशिष्ट द्रव्य उपादेय है। अनुकूल बाह्य पदार्थ निमित्त है और विवक्षित कार्य नैमित्तिक है।

शंकाकार -

निमित्त भी दो प्रकार के होते हैं! उदासीन और प्रेरक।

प्रवचनकार -

हाँ, निमित्तों का वर्गीकरण भी उदासीन और प्रेरक इन दो रूपों में किया जाता है। यद्यपि धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश और कालद्रव्य इच्छाशक्ति से रहित और निष्क्रिय होने से उदासीन निमित्त कहे जाते हैं तथा जीवद्रव्य इच्छावान और क्रियावान होने से एवं पुद्गलद्रव्य क्रियावान होने से प्रेरक

निमित्त कहे जाते हैं तथापि कार्योत्पत्ति में सभी निमित्त धर्मास्तिकाय के समान उदासीन ही हैं। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा है -

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।

निमित्तमात्रमन्यस्तु, गतेर्धर्मास्तिकायवत् ॥३५॥

अज्ञ को उपदेशादि निमित्तों द्वारा विज्ञ नहीं किया जा सकता और न ही विज्ञ को अज्ञ ही कह सकते हैं क्योंकि परपदार्थ तो निमित्त मात्र हैं जैसे कि स्वयं चलते हुए जीव और पुद्गलों को धर्मास्तिकाय होता है।

इसी को स्पष्ट करते हुए इसकी संस्कृत टीका में लिखा है -

“यहाँ यह शंका हो सकती है कि यों तो बाह्य निमित्तों का निराकरण ही हो जायगा। इसका उत्तर दिया है - अन्य जो गुरु आदि तथा शत्रु आदि हैं वे प्रकृत कार्य के उत्पादन में तथा विध्वंसन में सिर्फ निमित्त मात्र हैं। वस्तुतः किसी कार्य के होने व बिगड़ने में उसकी योग्यता ही साक्षात् साधक होती है।”

जिज्ञासु -

चारण ऋद्धिधारी मुनियों का उपदेश पाकर तो भगवान महावीर के जीव ने अपनी पूर्व शेर की पर्याय में आत्महित किया था। उसका ही परिणाम है कि वह जीव आगे जाकर भगवान महावीर बना। आप उपदेश रूप निमित्त का निषेध क्यों करते हैं?

प्रवचनकार -

हम उपदेश रूप निमित्त का निषेध कब करते हैं? हम तो निमित्त के कर्तृत्व का निषेध करते हैं। यदि उपदेश से ही आत्महित होता है तो उपदेश तो बहुत जीव सुनते हैं, सबका हित क्यों नहीं हो जाता? भगवान महावीर के जीव का हित मारीचि के भव में ही क्यों नहीं हो गया? क्या वहाँ सद्निमित्तों की कमी थी? पिता चक्रवर्ती भरत, धर्मचक्र के आदि प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव बाबा। भगवान ऋषभदेव के समवशरण में उनका उपदेश सुनकर तो उसने विरोध भाव उत्पन्न किया था। क्या उनके उपदेश में कोई कमी थी? क्या चारण ऋद्धिधारी मुनियों का उपदेश उनसे भी अच्छा था? इसी से सिद्ध होता है कि जब उपादान की तैयारी हो तब कार्य होता ही है और उस समय योग्य निमित्त भी होता ही है,

उसे खोजने नहीं जाना पड़ता है। क्रूर शेर की पर्याय में घोर वन में उपदेश का कहाँ अवसर था? पर उसका पुरुषार्थ जगा तो निमित्त आकाश से उतर कर आए। इसीलिए तो कहा था कि आत्मार्थी को निमित्तों की खोज में व्यग्र नहीं होना चाहिए। ‘निमित्त नहीं होता’ यह कौन कहता है? पर निमित्तों को खोजना भी नहीं पड़ता है। जब उपादान में कार्य होता है तो तदनुकूल निमित्त होता ही है।

निमित्तों के अनुसार कार्य नहीं होता है, कार्य के अनुसार निमित्त कहा जाता है। वेश्या के मृत शरीर को देखकर रागी को राग और वैरागी को वैराग्य उत्पन्न होता है। वह वेश्या रागी के राग और वैरागी के वैराग्य का निमित्त कही जाती है। यदि निमित्त के अनुसार कार्य होता हो तो उसे देखकर प्रत्येक को या तो राग ही उत्पन्न होना चाहिये या फिर वैराग्य ही।

आचार्यकल्प पं. टोडरमलजी कहते हैं - “परद्रव्य कोई जबरन तो बिगाड़ता नहीं है, अपने भाव बिगड़े तब वह भी बाह्य निमित्त है तथा इसके निमित्त बिना भी भाव बिगड़ते हैं, इसलिये नियमरूप से निमित्त भी नहीं है। इस प्रकार परद्रव्य का तो दोष देखना मिथ्याभाव है।”

न तो निमित्त उपादान में बलात् कुछ करता है और न ही उपादान किन्हीं निमित्तों को बलात् लाता या मिलाता है। दोनों का सहज ही सम्बन्ध होता है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध की सहजता को पंडित टोडरमलजी ने इस प्रकार स्पष्ट किया है -

“यदि कर्म स्वयं कर्ता होकर उद्यम से जीव के स्वभाव का घात करे, बाह्य-सामग्री को मिलावे तब तो कर्म के चेतनपना भी चाहिए और बलवानपना भी चाहिए; सो तो है नहीं, सहज ही निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। जब उन कर्मों का उदयकाल हो, उस काल में स्वयं ही आत्मा स्वभावरूप परिणमन नहीं करता, विभावरूप परिणमन करता है तथा जो अन्य द्रव्य हैं वे वैसे ही सम्बन्ध रूप होकर परिणमित होते हैं..... जिस प्रकार सूर्य के उदय के काल में चकवा-चकवियों का संयोग होता है, वहाँ रात्रि में किसी ने द्वेषबुद्धि से बलजबरी करके अलग अलग नहीं किये हैं, दिन में किसी ने करुणाबुद्धि से लाकर मिलाये नहीं हैं; सूर्योदय को निमित्त पाकर स्वयं ही मिलते हैं। ऐसा ही निमित्त-नैमित्तिक बन रहा है। उस ही प्रकार कर्म का भी निमित्त-नैमित्तिक भाव

१. मोक्षमार्ग प्रकाशक, श्री दि. जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़, २४३

२. वही, २५-२६

जानना?।”

जिज्ञासु -

निमित्त-उपादान के झगड़े में हम पड़ें ही क्यों? इसे न जानें तो क्या हानि है और जानने में क्या लाभ है ?

प्रवचनकार -

निमित्त-उपादान का सही स्वरूप समझना झगड़ना नहीं है। एक को दूसरे का कर्ता मानना झगड़ा है। इसी झगड़े के कारण जीव दुःखी हैं। निमित्त-उपादान का सही स्वरूप समझने से यह झगड़ा समाप्त हो जायगा।

उपादान-निमित्त का सही ज्ञान न होने पर व्यक्ति अपने द्वारा कृत कार्यों (अपराधों) का कर्तृत्व निमित्त पर थोप कर स्वयं निर्दोष बना रहना चाहता है। पर जैसे चोर स्वयंकृत चोरी का आरोप चांदनी रात के नाम पर मढ़ कर दंड-मुक्त नहीं हो सकता; उसी प्रकार आत्मा भी अपने द्वारा कृत मोह-राग-द्वेष भावों का कर्तृत्व कर्मों पर थोप कर दुःख मुक्त नहीं हो सकता है। उक्त स्थिति में स्वदोष दर्शन और आत्मनिरीक्षण की प्रवृत्ति की ओर दृष्टि तक नहीं जाती है।

इसकी यथार्थ समझ से पर-कर्तृत्व का अभिमान दूर हो जाता है। पराश्रय के भाव के कारण उत्पन्न दीनता-हीनता का अभाव हो जाता है। प्रत्येक द्रव्य की स्वतंत्रता का भान होता है और स्वावलम्बन का भाव जागता है। पर पदार्थों के सहयोग की आकांक्षा से होने वाली व्यग्रता का अभाव होकर सहज स्वाभाविक शान्त दशा प्रगट होती है।

अब समय हो गया है। आज जो बताया है उस पर गम्भीरता से विचार करना ! तुम्हारा कल्याण होगा !!

प्रश्न -

१. उपादान किसे कहते हैं ? वह कितने प्रकार का होता है ? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
२. निमित्त किसे कहते हैं ? वह कितने प्रकार का होता है ? प्रेरक निमित्त से क्या आशय है ?
३. किसी एक कार्य पर उपादान-उपादेय और निमित्त-नैमित्तिक घटाकर समझाइए।
४. उपादान-निमित्त के जानने से क्या लाभ है ?

पाठ ५

आत्मानुभूति और तत्त्वविचार

‘सुख क्या है?’ और ‘मैं कौन हूँ?’ इन प्रश्नों का सही उत्तर प्राप्त करने का एक मात्र उपाय आत्मानुभूति है तथा आत्मानुभूति प्राप्त करने का प्रारंभिक उपाय तत्त्वविचार है। पर आत्मानुभूति अपनी आरम्भिक भूमिका तत्त्वविचार का भी अभाव करती हुई उदित होती है क्योंकि तत्त्वविचार विकल्पात्मक है और आत्मा निर्विकल्पक स्वसंवेद्य तत्त्व है। निर्विकल्पक तत्त्व की अनुभूति विकल्पों द्वारा नहीं की जा सकती है। उक्त तथ्य ‘सुख क्या है?’^१ और ‘मैं कौन हूँ?’^२ नामक निबंधों में स्पष्ट किया जा चुका है। यहाँ तो विचारणीय प्रश्न यह है कि आत्मानुभूति की दशा क्या है और तत्त्वविचार किसे कहना?

अन्तरोन्मुखी वृत्ति द्वारा आत्मसाक्षात्कार की स्थिति का नाम ही आत्मानुभूति है। वर्तमान प्रगट ज्ञान को पर-लक्ष्य से हटा कर स्वद्रव्य (त्रिकाली ध्रुव आत्मतत्त्व) में लगा देना ही आत्मसाक्षात्कार की स्थिति है। वह ज्ञानतत्त्व से निर्मित होने से, ज्ञानतत्त्व की ग्राहक होने से और सम्यग्ज्ञान-परिणति की उत्पादक होने से ज्ञानमय है। अतः वह आत्मानुभूति ज्ञायक, ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञप्ति रूप होकर भी इनके भेद से रहित अभेद और अखण्ड है। तात्पर्य यह है कि जानने वाला भी स्वयं आत्मा है और जानने में आने वाला भी स्वयं आत्मा ही है तथा ज्ञान परिणति भी आत्मामय हो रही है।

१. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १, पाठ ५

२. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग ३, पाठ ५